एक को जानो

—डा० अमरनाथ पाण्डेय
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

हमारी दार्शनिक परम्पराओं में अनेक समान विचार विद्यमान हैं। उनको प्रस्तुत करने के विभिन्न प्रकार हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि किसी तत्व का प्रतिपादन निगूढ़ रूप में किया जाता है, जिसका अभिप्राय गहराई से परीक्षण करने पर ही प्रकट होता है। आचार्य किसी एक सूत्र को पकड़ लेते हैं, जिसके आधार पर अनेक विचार प्रकट किये जाते हैं। उन सभी विचारों तथा सूत्रों का परीक्षण सूक्ष्म दृष्टि से करना चाहिए तथा अन्य सन्दर्भों के साथ करना चाहिए। यदि किसी वस्तु का परीक्षण उसके स्वरूप को ही ध्यान में रखकर किया जायगा, तो उसका स्वरूप पूर्णतः प्रकाशित नहीं हो सकता। भारतीय दर्शनों की एक सुदीर्घ परम्परा है। विभिन्न दर्शनों के आलोचन-प्रत्यालोचन से विभिन्न दर्शनों में प्राप्त तत्वों में संवाद दृष्टिगत होता है। यहाँ हम जैन-दर्शन में स्वीकृत वस्तु के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं और देखने का प्रयास कर रहे हैं कि इस प्रकार की मान्यता उपनिषदों में भी मिलती है।

प्रत्येक वस्तु के दो प्रकार के धर्म हैं—(१) भावात्मक धर्म, जिन्हें स्वपर्याय कहा जाता है, और (२) अभावात्मक धर्म, जिन्हें परपर्याय कहा जाता है। भावात्मक धर्म में किसी मनुष्य के सम्बन्ध में उसके आकार, रूप, जाति, कुल, जन्मस्थान, आयु, पद आदि के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती है, किन्तु इतने से ही उसका सारा स्वरूप प्रकाशित नहीं हो पाता। वह एक समुदाय में रहता है, अनेक व्यक्तियों से उसके अनेक प्रकार के सम्बन्ध हैं। जब तक उन सम्बन्धों का निरूपण न हो जाय, यह पता न लग जाय कि वह व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से किन दृष्टियों से भिन्न है, तब तक उस व्यक्ति का पूरा विवेचन नहीं माना जा सकता। उसमें रहने वाले धर्मों को भी जानना है और न रहने वाले धर्मों को भी। किसी भी व्यक्ति के स्वरूप का सर्वाङ्गीण विवेचन उसके भावात्मक तथा अभावात्मक धर्मों को प्रस्तुत करने से ही सम्भव होता है।

स्वपर्याय थोड़े होते हैं, जबकि परपर्याय अनन्त—

"स्तोकाः स्वपर्यायाः परपर्यायास्तु व्यावृत्तिरूपा अनन्ताः।"

—षड्दर्शन समुच्चय, गुणरत्न की टीका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन में कहा गया है कि वस्तु अनन्त धर्मों वाली होती है—**अनन्तधर्मकं वस्तु**। यह एक सूत्र है, जिससे वस्तु के स्वरूप को सरलता से समझा जा सकता है। जब हम किसी वस्तु के भावात्मक धर्मों के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तब हम देखते हैं कि उस वस्तु के भावात्मक धर्मों की संख्या कम है और जब अभावात्मक धर्मों के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तब यह स्पष्ट होता है कि अभावात्मक धर्म संख्या में बहुत अधिक हैं। इस प्रकार एक ही वस्तु के अनन्त धर्म हो जाते हैं। समय के अनुसार धर्मों में परिवर्तन भी होता रहता है, नवीन धर्मों की उत्पत्ति भी होती रहती है। एक ही मनुष्य की अवस्था आदि के क्रम से अनेक विशेषताएँ होती हैं और इन विशेषताओं में समय-समय पर परिवर्तन भी होता रहता है। किसी व्यक्ति की किसी स्थिति में प्रशंसा होती है और किसी स्थिति में निन्दा। यह धर्मों में परिवर्तन के कारण होता है।

हमारे सामने प्रश्न है कि किसी वस्तु को ठीक ठीक जाना जाय। हम यह भी जानते हैं कि वस्तु के अनन्त धर्म हैं, जो भावात्मक तथा अभावात्मक दोनों हैं। जब हम वस्तु को जानेंगे, तो अनन्त धर्मों को जानेंगे, उसके सारे सम्बन्धों को जानेंगे। पूरे जगत् के सन्दर्भ में उसे रखकर उस पर विचार करेंगे। वह वस्तु अकेली नहीं होगी, वह जगत् की अगणित वस्तुओं के सन्दर्भ में होगी। जब उसका मूल्याङ्कन होगा, तो अन्य वस्तुओं के स्वरूप का भी मूल्याङ्कन होगा। '**अनन्तधर्मकं वस्तु**' का यही रहस्य है। इसके पीछे बहुत बड़ा भाव छिपा हुआ है।

जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु को पूर्णतः जान लेता है, तब यह कहा जा सकता है कि सभी वस्तुओं को जान लेता है। कोई सामान्य व्यक्ति इस स्थिति में नहीं पहुँच सकता। हम प्रतिदिन देखते हैं कि जिसके सम्बन्ध में हमारा यह विचार है कि हम उसे पूर्णतः जानते हैं, उसे हम पूर्णतः नहीं जानते। आज किसी के साथ मैत्री है, तो कल शत्रुता। आज उसके सम्बन्ध से हमारा लाभ होता है, तो कल हानि। हम किसी से वञ्चित होते हैं, किन्तु वञ्चना के बाद भी हम पुनः उसके सम्पर्क में आते हैं और धोखा खाते हैं। यह क्यों होता है? क्या हम इसके कारणों पर विचार करते हैं? व्यक्ति तो सामान्य रूप से यही समझता है कि किसी व्यक्ति का इतना काम किया, फिर भी वह धोखा देता है। इसके पीछे रहस्य यह है कि हम उस व्यक्ति को नहीं समझते, फलतः हम दुःखित होते हैं। मूल बात तो यह है कि वस्तु के स्वरूप को ठीक से जाना जाय। जब हम किसी महापुरुष के जीवन के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तो देखते हैं कि वे व्यवहारों में इस प्रकार दुःखित नहीं होते, जिस प्रकार हम होते हैं। इसका कारण यह है कि वे वस्तु अथवा व्यक्ति के स्वरूप को ठीक-ठीक जानते हैं, अतः व्यवहार में किसी भी प्रकार सन्देह नहीं रहता और न तो आसक्ति रहती है, अतः व्यवहार से किसी भी प्रकार दुःखित होने की बात नहीं उठती। सामान्य व्यक्ति वस्तु के स्वरूप को नहीं जानता, अतः दुःखित होता है।

वस्तु स्वरूप से सत् है, किन्तु पर रूप से असत्, अतः वस्तु सद्सदात्मक है—

सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च।
अन्यथा सर्वसत्त्वं स्यात् स्वरूपस्याप्यसम्भवः॥

जब किसी घट के सम्बन्ध में विचार उठता है, तो यही कहा जायगा कि उस घट में घटव्यतिरिक्त पदार्थों का अभाव है। घट के ज्ञान के लिए घट के स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है और साथ ही घटव्यतिरिक्त पदार्थों का भी ज्ञान आवश्यक है, अतः घट को जान लेने पर अन्य पदार्थों का भी ज्ञान हो जाता है। आगम में कहा गया है कि जो एक को जान लेता है, वह सभी को जान लेता है और जो सभी को जान लेता है, वह एक को जान लेता है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ।
जो सव्वं जाणइ से एगं जाणइ॥

'य एकं जानाति स सर्वं जानाति।
यः सर्वं जानाति स एकं जानाति॥

इसी बात को इस प्रकार से भी प्रकट किया गया है—

एको भावः सर्वथा येन दृष्टः।
सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः॥

सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः।
एको भावः सर्वथा तेन दृष्टाः॥

जिसने एक भाव को सब प्रकार से देख लिया है, उसने सभी भावों को सब प्रकार से देख लिया है और जिसने सभी भावों को सब प्रकार से देख लिया है, उसने एक भाव को सब प्रकार से देख लिया है।

जैन-आचार्यों का यह विवेचन—एक के ज्ञान से सबका ज्ञान—नितांत महत्वपूर्ण है। इससे यह प्रकट होता है कि जैन-आचार्यों की दृष्टि में एक सत्ता के सभी विलास हैं। जो तत्त्व एक में विद्यमान है वही अन्य पदार्थों में भी विद्यमान है। इस प्रकार एक के ज्ञान से सभी का ज्ञान सम्भव होता है। वेदान्त-दर्शन में भी यह तत्त्व प्रकाशित किया गया है। वेदान्त मानता है कि एक के अतिरिक्त दूसरा नहीं है। जो कुछ दिखाई पड़ रहा है, वह उस परम सत्ता का ही विलास है।

उपनिषद् कहती है कि एक के ज्ञान से सबका ज्ञान हो जाता है, अतः मुख्य बात यह है कि एक का ज्ञान प्राप्त किया जाय। जिस एक को जान लेने से सभी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है, उसी को जानना चाहिए और वह तत्त्व है—ब्रह्म। ब्रह्म-ज्ञान से मुक्ति होती है। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता नहीं है। जो कुछ दिखाई पड़ रहा है, वह ब्रह्म ही है, अतः यह कथन समीचीन है कि एक को जान लेने से सब-कुछ जान लिया जाता है। जैन-आचार्यों ने उपनिषद् के इस रहस्य को समझा था, अतः उन्होंने एक भाव के दर्शन से सभी भावों के दर्शन की बात कही है।

"यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन, सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद् [वाचारम्भणं, विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।"

—छान्दोग्योपनिषद् ६/१/१

मिट्टी सत्य है, घट, शराब आदि उसके विकार हैं। जैसे एक मृत्तिकापिण्ड के ज्ञान से मिट्टी के सभी विकारों का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि विकार तो वाणी के आश्रयभूत नाम ही हैं, सत्य तो केवल मिट्टी है,[1] उसी प्रकार यह समझना चाहिए कि ब्रह्म ही सत्य है।

अन्य सभी वस्तुएँ नाममात्र हैं।

उपनिषदें कहती हैं कि ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ है—

'इदं सर्वं यदयमात्मा'—(बृहदारण्यक २/४/६),
'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' (मु० २/२/१२),
'आत्मैवेदं सर्वम्' (छा० ७/२५/२) इत्यादि।

अद्वैतदर्शन में जिस प्रकार एक तत्व के ज्ञान से सभी वस्तुओं के ज्ञान की बात कही गई है, उसी प्रकार जैन-दर्शन में भी एक भाव के ज्ञान से सभी भावों के ज्ञान की बात कही गई है। यह महत्वपूर्ण बात है कि किस प्रकार आचार्य अपने दर्शनों के आधार पर चिंतन करते हुए परम तत्त्व का साक्षात्कार करते हैं।

---

१. 'एकेन मृत्पिण्डेन परमार्थतो मृदात्मना विज्ञातेन सर्वं मृन्मयं घटशरोवोदञ्चनादिकं मृदात्मकत्वाविशेषाद् विज्ञातं भवति। यतो वाचारम्भणं विकारो नामधेयंवाचैव केवलमस्तीत्यारभ्यते—विकारो घटः शराव उदञ्चनञ्चेति।'

—ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य—२/१/१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न दर्शनों में अनेक बातें भिन्न-भिन्न संदर्भों में प्राप्त होती हैं तथा भिन्न-भिन्न प्रतीत होती हैं, किन्तु यदि उनका संयोजन किया जाय, तो यह पूर्णतः भासित होगा कि उन भिन्न-भिन्न सन्दर्भों के द्वारा एक अभेद का उपस्थापन होता है। यह अभेद ही हमारा लक्ष्य है, क्योंकि उसी से ज्ञान का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है। जो भेद है, वह दृष्टि में भेद उत्पन्न करता है और वस्तु के स्वरूप पर आवरण डाल देता है। इसी आवरण को हटाना है यह अभेददृष्टि से दूर होता है। इसका उन्मीलन अद्वैत-वेदान्त और जैन-दर्शन में किया गया है। विचार करने पर यही प्रतीत होता है कि जैनदर्शन एक परम तत्त्व की खोज में लगा हुआ है। प्रक्रियाओं के भेद के कारण भेद दिखाई पड़ रहा है। यह भेद साधनागत भेद है, लक्ष्य का भेद नहीं। उस लक्ष्य की खोज करनी है, जो एक है। अनेक की दृष्टि भ्रान्ति दृष्टि है। असत् का अपलाप करना है, क्योंकि उसका कोई भाव नहीं है। जानना है उस सत् को, जिसका अभाव नहीं है।

जैनदर्शन एक को जानने के लिए जिस पद्धति का निर्देश करता है, वह भी विविक्त मार्ग है। केवल वही मार्ग है, ऐसी बात नहीं है। जैनदर्शन में विचार की यह उदात्तता है कि वह दूसरे मार्गों के भी महत्व को स्वीकार करता है और यह केवल स्थूल विचार के धरातल पर नहीं है। इसके मूल में चित्त के धरातल पर विद्यमान अहिंसा है। यहीं से निकलती है विचार की उदात्तता और सिद्धान्तों के गर्भ में पलती है प्रेम की भावना। न केवल विचार के क्षेत्र में यह औदार्य है, अपितु व्यवहार के क्षेत्र में भी यही दिखाई पड़ रहा है। इस प्रकार जैन-दर्शन का अन्तस्थल और बाह्यरूप पूर्णतः निर्मल और निष्कपट हो जाता है। यह तभी सम्भव होता है, जब यह जान लिया जाता है कि एक भाव है, एक सत्ता है, एक तत्त्व है, और उसी के सभी विलास हैं। वर्तमान परिस्थितियों में यह परम आवश्यक हो गया है कि एक को जानो, भेद को नष्ट करो। जिससे हमारा देश अखण्डित रहेगा, वह अभेद की दृष्टि है।

जब-जब समाज में अनेक वादों का प्रचार हुआ है, तब-तब विषमताएँ उत्पन्न हुई हैं और मनुष्य का मार्ग धुँधला हो गया है। उस परिरिथति में कोई ऐसा आचार्य उत्पन्न होता है, जो अभेद-दृष्टि का उपस्थापन करता है। इससे मानव अपने निश्चित लक्ष्य को देख पाता है और उचित मार्ग पर चल पड़ता है। शंकराचार्य के पहले अनेक वाद प्रचलित थे और मनुष्य निश्चित नहीं कर पाता था कि उसका मार्ग क्या है। शंकराचार्य ने स्थिति की गम्भीरता को पहचाना और अद्वैत का उपदेश दिया। इससे देश का कल्याण हुआ, अखण्ड भारत का स्वरूप सामने आया तथा सांस्कृतिक परम्परा की व्याख्या का मार्ग प्रशस्त हुआ। आज शंकराचार्य के समय की परिस्थिति विद्यमान है। समाज में अनेक वाद प्रचलित हो रहे हैं और मनुष्य भटक रहा है। इस समय समाज को आवश्यकता है अभेद की दृष्टि की। जैनदर्शन में जिस अभेद-दृष्टि की प्रतिष्ठा मिलती है, उसकी निर्भ्रान्त अवतारणा होनी चाहिए। इससे देश का कल्याण हो सकेगा और विश्व की मानवता को उचित प्रकाश मिल सकेगा।

—卐—

यतनाशील (जागरूक) साधक का अल्प, कर्मबन्ध अल्पतर होता जाता है और निर्जरा तीव्र, तीव्रतर। अत: वह शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

—निशीथ भाष्य ३३३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org